अध्याय : 1

विषय-प्रवेश

अध्याय : 1

विषय-प्रवेश

भूमिका

साठोत्तरी साहित्य में "प्रयोग" प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। "प्रयोग" की सहायता से ही लेखक अपने लेखन में नवीनता ला सकता है। कोई भी लेखक पूर्ववर्ती परम्परा से बिलकुल अलग नहीं हो सकता, फिर भी परिवर्तित गतिमान जीवन के साथ-साथ अनुभवजन्य नये-नये प्रयोग जरूर कर सकता है। नये प्रयोग के कारण साहित्य में चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में प्रयोग प्रवृत्ति सर्वाधिक रूप में दृष्टिगोचर होती है। नये-पुराने अनेक नाटककारों की विचारधारा में परिवर्तन हुआ है। उसीके अनुसार उन्होंने नाट्य-रचना के सिद्धान्तों को नये सिरे से जाँचा, परखा और अपनी रचनाओं में नये प्रयोगों को व्यावहारिक धरातल प्रदान किया। यही कारण है कि स्वातंत्र्योत्तर युग में एक नवीन रंगचेतना विकसित हुई दिखाई देती है। हिन्दी की नयी प्रयोगशील नाट्य परम्परा जगदीशचन्द्र माथुर के "कोणार्क" से शुरू होती है। जगदीशचन्द्र माथुर के उपरान्त हिन्दी में अनेक नयी प्रतिभाएँ उदित हुई हैं, जिनमें मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायण लाल, सुरेन्द्र वर्मा आदि प्रयोगशील नाटककारों ने हिन्दी नाटक और रंगमंच को अपने विभिन्न प्रयोगों द्वारा समृद्ध किया है। इन नयी प्रतिभाओं में एक सार्थक नाम मणि मधुकर है, जिन्होंने कथ्य, शिल्प, शैली और मंचीय प्रयोग कर हिन्दी नाट्य साहित्य को उजागर किया है।

·1· प्रयोग : अर्थबोध, अर्थविस्तार

प्रयोग की कल्पना अन्वेषण के साथ जुड़ी हुई है। प्रयोगवादी लेखक नयी बातों की खोज करता है। प्रयोग के माध्यम से ही अज्ञात की खोज की जा सकती है। प्रयोग नवीनता का स्वीकार करता है। इसमें प्रसंगवश अति यथार्थता भी होती है। अति यथार्थता की कठोरता के कारण बहुत कम लेखक उसे अपनाते हैं। पाश्चिमात्य देशों में "प्रयोग" और "प्रयोगशील" शब्दों का व्यवहार व्यापक अर्थ में किया जाता है। प्रयोग वस्तुगत और शिल्पगत दो प्रकार के होते हैं। इन दोनों का महत्त्व साहित्य में है। प्रयोग साहित्य के बाह्यपक्ष की अपेक्षा आंतरिक पक्ष से अधिक जुड़े हुए होते हैं।

प्रयोग बदलते हुए युग की माँग है। साहित्य में परिवर्तन होता जा रहा है और नये-नये साहित्यिक प्रवाह विकसित होते जा रहे हैं। साहित्य की सभी विधाओं मेंआज प्रयोगशीलता बढ़ती जा रही है। वस्तु, शिल्प, शैली आदि के आधार पर प्रयोग होते जा रहे हैं। "प्रयोग वास्तव में किसी भी कला सर्जना का मौलिक धर्म है और प्रयोग की प्रवृत्ति भी कला के जन्म के साथ ही जन्मी है - जब भी कलाकार कुछ नया सृजन करता है, वह उसका प्रयोग है।"[1] हिन्दी में प्रयुक्त "प्रयोग" शब्द अंग्रेजी के 'Experiment' का पर्यायवाची रूप है।

"कला के विविध रूपों के संदर्भ में प्रयोग शब्द का व्यवहार आज की वैज्ञानिक चिंतन-पद्धति की देन है। विज्ञान का हर सत्य परीक्षण द्वारा सिद्ध किया जाता है और यह परीक्षण, सत्य तक पहुँचने की इस प्रक्रिया या विधि का नाम ही प्रयोग है।"[2]

द रीडर्स डाइजेस्ट ग्रेट एनसाइक्लोपेडिक डिक्शनरी वॉल्यूम 1, में प्रयोग के अर्थ इस प्रकार बताये गए हैं - किसी अज्ञात वस्तु की खोज करने के लिए की गयी क्रिया अथवा क्रियाव्यापार, परीक्षणात्मक प्राक्कल्पना किसी अज्ञात वस्तु को दृष्टान्त देकर स्पष्ट करना, पद्धति इ·।[3]

वेब्स्टर्स इन्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लँग्वेज, वॉल्यूम II में प्रयोग के अर्थ इस प्रकार दिए गए हैं - प्रयोग करना, किसी वस्तु को परीक्षण अथवा क्रियाव्यापार द्वारा स्पष्ट करना, प्रयत्न करना, जानना, समझना, सिद्ध करना इ॰।[4]

अंग्रेजी Experiment का अर्थ है - संपरीक्षण, परीक्षा, प्रयोग, परीक्षण की प्रक्रिया, परीक्षा, जाँच, परख एवं इम्तिहान।[5]

'प्रसाद का नाट्य साहित्य : परंपरा एवं प्रयोग' में 'प्रयोग' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है - "प्र" उपसर्गपूर्वक "युज" धातु से भावकर्मादि में "घ" प्रत्यय होता है। यह प्रत्यय यथायथ ही होता है अर्थात "युज" के अपने ही अर्थ में होता है। "युज" धातु का अर्थ है "योग" (जुड़ना या जोड़ना)। "प्रयोग" का व्युत्पत्तिपरक अर्थ योग करना या मिलाना है।[6]

मानक हिन्दी कोश (तीसरा खंड) में बताया गया है कि -

प्रयोग - पुं (सं॰प्र॰√ युज़ घञ)

अ) किसी चीज या बात को आवश्यकता अथवा अभ्यासवश काम में लाना। इस्तेमाल। व्यवहार।

आ) आजकल वैज्ञानिक क्षेत्रों में किसी प्रकार का अनुसंधान करने या कोई नई बात ढूँढ निकालने के लिए की जानेवाली कोई परीक्षणात्मक क्रिया अथवा उसका साधन।

इ) जो तथ्य उक्त प्रकार के अनुसंधान से सिद्ध हो चुका हो उसे दूसरों को समझाने के लिए की जानेवाली वह क्रिया जिससे वह तथ्य ठीक और मान्य सिद्ध होता है। प्रत्यक्ष रूप से कोई काम या बात प्रमाणित या सिद्ध करने की क्रिया।

ई) वह क्रिया जो यह जानने के लिए की जाती है कि कोई काम, चीज या बात ठीक तरह से पूरी उतर सकेगी या नहीं। जाँच। परीक्षण।[7]

प्रयोग का वैज्ञानिक अर्थ है - "सिद्धान्त का प्रतिकूलार्थ या प्रतिलोम।[8]

"हिन्दी साहित्य कोश" में बताया गया है कि "प्रयोग" परीक्षण एवं विभिन्न तथ्यों के अन्वेषण करने की विधि है।[9]

विभिन्न देश-काल की सीमाओं में जिन प्रवृत्तियों की प्रेरणा से साहित्य में जाने-अनजाने रचनात्मक और आलोचनात्मक मोड़ आते हैं, वे "प्रयोग" हैं और उन प्रयोगों का उसी दृष्टि से यथार्थ मूल्यांकन भी "प्रयोग" है।[10]

उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें साहित्यकार अपनी भावयत्री तथा कारयत्री प्रतिभा के द्वारा साहित्य सृजन के लिए कुछ नयी कल्पना या व्यवस्था का प्रणयन करता है। ये प्रयोग मुख्यतया वस्तु, शिल्प, शैली आदि में किए जाते हैं।

2· प्रयोग की आवश्यकता

जब जमाना एक युग के बीच से गुजरता है और जीवनमूल्यों में तेज परिवर्तन होता है, तब प्रयोग की आवश्यकता होती है। प्रयोग युग की माँग है। प्रयोग ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे साहित्य में पुनर्जीवन आता है। बिना प्रयोग के साहित्य निर्जीव बन जाता है। आधुनिक युग में साहित्य को धारा-प्रवाहित बनाने का प्रभावी माध्यम प्रयोग ही है।

3· प्रयोग का स्वरूप

साहित्यकारों ने अपनी अनुभवशीलता, प्रतिभा तथा अपनी प्रयोगधर्मिता को जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उससे प्रयोग का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

अ) प्रयोग की प्रकृति

प्रयोग की प्रकृति सर्जनात्मक एवं संचेतनात्मक होती है। इसमें स्वच्छंदवादिता रहती है। प्रयोग की मानसिक भूमिका विरोध की होती है। विद्रोह प्रयोग का गुणधर्म है। प्रयोग की प्रकृति में नवीनता निहित है। प्रयोग का आधार दृष्टि की नवीनता है।"

प्रयोग में मानव की प्रगति और सहजगति देखने को मिलती है। प्रयोग में सामर्थ्य पैदा करने का काम प्रतिभा करती है। प्रयोग की प्रकृति निष्ठा है। परिचित वस्तुओं में सन्निहित संभावनाओं का उद्‌घाटन करना ही प्रयोग का उद्देश्य है। प्रयोग की प्रकृति में समसामयिकता होती है। प्रयोग की प्रकृति निर्बाध होती है, प्रवहमान होती है।

आ) प्रयोग और प्रयोगधर्मिता

जीवन के जटिल और गहनतम यथार्थ से साक्षात्कार और उसे कार्य-व्यापार में प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रयोग एक सर्जनात्मक विवशता है। बदलते जीवन संदर्भों को अभिव्यक्त करने के लिए कला का प्रयोगधर्मी होना स्वाभाविक है। डॉ॰ सत्यवती त्रिपाठी के शब्दों में - "नाटक और रंगमंच में नवीन प्रवृत्तियों या रूढ़ियों के बहिष्कार के साथ अप्रचलित या अपूर्व तत्वों के समावेश को हम प्रयोग कह सकते हैं और प्रयोग की इस प्रवृत्ति को प्रयोगधर्मिता।"[12] प्रयोगधर्मिता न तो आकस्मिक होती है और न ही चौकानेवाली उद्देश्यहीन चीज। यही तो एक परंपरा, समय और परिवेश सापेक्ष स्थिति है, जिसके मूल में गंभीर आत्मान्वेषण की भावना सन्निहित रहती है।

इ) परंपरा और प्रयोग

परंपरा और प्रयोग का कारण - कार्य संबंध है। परंपरा का संबंध अतीत से होता है और प्रयोग का वर्तमान युग से। किन्तु अतीत और वर्तमान, प्राचीन और नवीन सापेक्षता में ही देखे जा सकते हैं। कर्तव्य और अधिकार की भाँति प्रयोग और परंपरा में अनिवार्य संबंध है।

परंपरा एकमुखी तो प्रयोग बहुमुखी होता है। परंपरा नदी की तरह निम्नगामिनी है, प्रयोग ज्वालामुखी की तरह उर्ध्वगामी है। परंपरा अनुशासन है, लेकिन प्रयोग मुक्ति है। परंपरा का स्वभावधर्म शान्ति है, प्रयोग का स्वभावधर्म क्रान्ति। परंपरा धीरे-धीरे काई की तरह सड़ जाती है, उस पर जंग लग जाती है, वह मृत हो जाती है।[13]

साहित्य में परंपरा का वही मूल्य है, जो जगत् में जीवन का। प्रयोग का परंपरा के साथ इतना ही सामंजस्य है कि वह अतीत के अनुभवों का संबल लेकर निरंतर आगे बढ़ने की शक्ति ग्रहण करता है। स्वस्थ परंपरा विकासमान जीवन के साथ परिवर्तित होती रहती है और नये प्रयोगों को प्रेरणा प्रदान करती है। प्रयोग परंपरा का सच्चा उत्तराधिकारी है।

ई) समाजगत प्रयोग

बदलते जीवन संदर्भों और युगसत्य के आंतरिक यथार्थ को पकड़कर उसे अभिव्यक्त करने के लिए कला का प्रयोगधर्मी होना स्वाभाविक है। प्रयोगधर्मिता ही वह गति है, जो नाटक को अन्य आकर्षणों से समन्वित कर सामूहिक अभिव्यक्ति का एक सार्थक और जीवन्त माध्यम बनाती है। हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रयोगशीलता का निर्माण स्वातंत्र्योत्तर काल में दिखाई देता है। साहित्यकारों पर विघटित मानसिकता का अधिक परिणाम हुआ। मानव मूल्यों में विघटन की स्थितियाँ उत्पन्न होने से आतंक, भय, एकाकीपन, संत्रास, टूटन, अनास्था, अजनबीपन, स्व-अस्तित्व का बोध आदि का मानवी जीवन में प्रवेश हुआ। देशविभाजन के कारण पाशविकता बढ़ती गयी। मानवी पशुता, बढ़ती हुई समस्याएँ और प्रजातंत्रीय नेताओं की स्वार्थी नीति ने भारतीय जनमानस को घायल बना दिया। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने मानवी संवदेनशीलता, कोमलता और मानवी मूल्यों को नष्ट कर दिया। इस प्रकार सामाजिक परिस्थिति का असर हिन्दी नाट्य साहित्य पर अधिक मात्रा में पड़ा और हिन्दी नाट्य साहित्य में रिक्तता, अनास्था का स्वर सुनाई देने लगा। साहित्य की प्रत्येक विधा में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से प्राचीन मानदंड अस्वीकृत होने लगे। नये-नये रूपों की तलाश होने लगी। इसी तलाश का दूसरा नाम "प्रयोग" है।

4· साहित्य में प्रयोग

प्रयोग परीक्षण तथा विभिन्न तथ्यों को खोजने की विधा है। प्रयोग ने साहित्यिक सर्जना और चिंतन को एक नयी संभावनापूर्ण दिशा दी और अंततः प्रयोग एक दृष्टिबोध, एक मूल्य या सर्जना का मौलिक प्रेरणा तत्व बनकर हिन्दी में प्रतिष्ठा पाने लगा।

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण साहित्यकार को साहित्य में नवीन प्रयोग करने से पूर्व समाज का विचार करना पड़ता है। व्यापक प्रयोग में महान उद्देश्य रहता है। केवल फैशन के रूप में किया गया प्रयोग संकीर्ण की कोटि में आता है और ऐसा प्रयोग वादग्रस्त बनता है। परिवर्तन ही जीवन है। साहित्य में जीवन की अभिव्यक्ति होती है और परिवर्तित जीवन दृष्टिगोचर होता है और इस अभिव्यक्ति का सुष्ठु रूप "प्रयोग" ही है।

अ) संस्कृत नाटक में प्रयोग

जीवन के जटिल और गहनतम यथार्थ से साक्षात्कार और उसे कार्यव्यापार में प्रस्तुत करने की दृष्टि से प्रयोग एक सर्जनात्मक विवशता है। पुरातन काल से आजतक मनुष्य ने साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में प्रयोग किए हैं। अज्ञेय के मतानुसार - "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों में अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"[14]

प्राचीन काल से संस्कृत नाट्य साहित्य में अनेक नवीन प्रयोग होते आ रहे हैं। संस्कृत नाट्य का विकास बहुत पहले से चले आ रहे वैदिक कर्मकांडों से माना जाता है। ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर पंचम वेद के रूप में ब्रह्म का नाट्य रचना करना यही प्रमाणित करता है कि संस्कृत नाट्य मूलतः धार्मिक अनुष्ठानों से ही विकसित हुआ है।

संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना से यही स्पष्ट है कि नाटक रंगमंच पर खेलने के लिए लिखे जाते थे। ये नाटक उत्सवों पर खेले जाते थे। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" ग्रीष्म ऋतु के अवसर पर खेला जाता था। हर्ष का "रत्नावली" वसन्तोत्सव पर खेला जाता था। नाट्यप्रयोग विवाह, यात्रा, अभिषेक, पुत्र जन्म तथा विशेष उत्सवों पर किये जाते थे। नाटक का इतिहास बताता है कि प्रारम्भिक चरण में नाटक नृत्य-गीतमय

थे, फिर बाद में उसमें कथा और चरित्र का समावेश हुआ, नाट्यकृति की रचना बाद में हुई।

संस्कृत नाटक के इतिहास में राजा शुद्रक का "मृच्छकटिकम" या विशाखदत्त का "मुद्राराक्षस" नवीन प्रयोग की दृष्टि से अच्छे उदाहरण हैं। रंगमंचीय निर्देशन की दृष्टि से संस्कृत नाटकों में रंगमंच पर दृश्यों के संकेत दिए जाते थे। तत्कालीन संस्कृत नाटकों के दृश्यविधान के संदर्भ में अनेक प्रयोग देखने को मिलते हैं।

आ· पाश्चात्य नाटक में प्रयोग

पाश्चात्य रंगमंच के मुख्यतः दो रूप हैं - ·1· अयथार्थवादी नाट्य और ·2· यथार्थवादी रंगमंच। "अयथार्थवादी नाट्य परंपरा को आधुनिक युग में ब्रेख्ट के नाटकीय क्रिया कलाप में अभिव्यक्ति मिली। उसने योरोप और एशिया के परंपरागत नाट्यरूपों को खोजा और उन रूपों में प्रतीकात्मकता, लोककथाएँ, स्वगत भाषण, एकतरफा भाषण, मुखौटे आदि विशेषताओं को अपनी नाटकीय अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।"

"पाश्चात्य रंगमंच की दूसरी नाट्यधारा - यथार्थात्मक रंगमंच। जीवन जैसा है उसे उसी रूप में नाटक में उतार देना - यही प्रतिबद्धता है इस नाट्य रूप की। इसीलिए नाटक संबंधी हर चीज के साथ स्वाभाविकता, उसका सच्चा यथार्थ होना ही नाट्य का मुख्य मानदण्ड बन गया और इसीलिए नाट्य जीवन-वास्तव के पूरी तरह निकट लाया गया।"[15]

योरोप में यथार्थवादी नाटकों को चरमसीमा पर पहुँचाने का श्रेय विख्यात नाटककार इब्सन को है। उनके "पिलर्स ऑफ सोसाइटी", "डाल्स हाउस", "घोस्टस", "देशभर का दुश्मन", "द वाइल्ड डक्स", "द सी ओमेन", "हैडागैबलर" आदि ययार्थवादी नाटक हैं।

पाश्चात्य नाट्य साहित्य में महत्त्वपूर्ण प्रयोगकर्ता नाटककार "यूजीन ओ नील" था। यूजीन ने अपने नाट्य प्रयोगों द्वारा अमरीकी नाटक को एक दिशा एक निजी अस्तित्व दिया।[16] इनके पश्चात "ट्रेनीसी विलियम्स", "आर्थर मिलर" आदि ने पाश्चात्य नाटक को प्रयोगात्मकता में ढालने का प्रयत्न किया।

इ· स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक में प्रयोग

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में प्रयोग प्रवृत्ति अधिक मात्रा में दिखाई देती है। स्वातंत्र्यपूर्व काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण प्रेमी, लाला श्रीनिवास-दास, सेठ गोविन्ददास आदि नाटककारों ने पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, भाषाशैली, उद्देश्य पर कम अधिक मात्रा में प्रयोगशीलता को अपनाया था। स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे कई नाटककारों ने प्रयोग के विकास की ओर ध्यान दिया। डॉ·शंकर शेष, जगदीशचन्द्र माथुर, मोहन राकेश जैसे नाटककारों ने परिवर्तित समाज की दृष्टि से नये प्रयोग किए। आज कथ्य, चरित्र, शिल्प और रंगमंचीय स्तर पर अनेक नये प्रयोग किए जा रहे हैं, जिससे हिन्दी नाटक साहित्य विकसित हो रहा है। नाट्य रचना के सिद्धान्तों को भली भाँति जाँचकर, परखकर नये प्रयोगों के रूप में ढालने का प्रयत्न हो रहा है।

प्रयोगशील नाटककारों में जगदीशचन्द्र माथुर का सर्वप्रथम नाम लिया जा सकता है। इनका "कोणार्क" हिन्दी का पहला प्रयोगशील नाटक है। इस संदर्भ में डॉ·नरनारायण के विचार समीचीन हैं - ""कोणार्क" से हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की नयी परंपरा शुरू होती है, कोणार्क हिन्दी रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा सकनेवाला पहला साहित्यिक नाटक अर्थात रंगमंच का काव्य अर्थात दृश्यकाव्य है, कोणार्क, हिन्दी का पहला नया नाटक है क्योंकि शैली, शिल्प और कथ्य इन सभी धरातलों पर वह परंपरा से सर्वथा नवीन रूप प्रस्तुत करनेवाला नाटक है।"[17] धर्मवीर भारती का "अंधायुग" काव्य नाटक है। इन्होंने काव्य को माध्यम बनाकर नाटकीय संप्रेषण का नवीन प्रयोग किया है।

·1· असंगत नाट्य प्रयोग :- असंगत नाट्य-परंपरा वास्तव में हिन्दी के लिए पश्चिम की ही देन है। "ऐब्सर्ड" एक विशिष्ट और दार्शनिक प्रयोग है। सबसे पहले मार्टिन एसंलिन ने इस शब्द की, इसके दर्शन की विस्तृत व्याख्या की और नाटक को यह "ऐब्सर्ड" शब्द दिया। पश्चिम में सैमुएल बैकेट, आयनेस्को, एडवर्ड एलबी, जेने आदि प्रमुख विसंगत नाटककार हुए। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्यक्ति अत्यधिक संत्रस्त

हो उठा और उसके अस्तित्व का संकट उभरकर सामने आया। उसमें घोर निराशा, टूटन, अनास्था और जीवन की निस्सारता व्याप्त हो गयी। महायुद्ध के भयानक उपद्रवों से प्रेरित होकर हिन्दी में स्वातंत्र्योत्तर काल में असंगत नाटक लिखे गए।

हिन्दी के असंगत रंगमंच के लिए जिन नाटककारों ने नाटक लिखे हैं, उनमें मुख्य हैं - बिपिनकुमार अग्रवाल, शम्भूनाथ सिंह, शांति मेहरोत्रा, लक्ष्मीकान्त वर्मा, राजकमल चौधरी, मुद्राराक्षस, लक्ष्मीनारायण लाल, सुदर्शन चोपड़ा, मणि मधुकर, डॉ॰ सत्यव्रत सिन्हा आदि।

विचारों को प्रतीकात्मक ढंग से दिखाना, दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए नाटकीय वातावरण पैदा करना असंगत नाटकों का वैशिष्ट्य है। "असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं। इनमें परंपरागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। जीवन की विद्रूपता और विकृतियों को ये अपना आधार मानते हैं।"[18] विसंगत नाट्य का मुख्य केंद्र आज का अभिशप्त इन्सान ही है। इन नाटकों में व्यक्ति, व्यक्ति न रहकर प्रतीक रह जाता है। उसका कोई नाम भी नहीं होता। वह अ, ब, स या क, ख, ग या काले सूटवाला आदि कुछ भी हो सकता है।

"असंगत नाटक" वास्तव में हिन्दी नाट्य साहित्य में एक अभिनव प्रयोग है। हिन्दी में असंगत नाटकों की परंपरा वास्तव में मानव जीवन की असंगति या विसंगति से जुड़ी हुई है। असंगत नाटककारों ने भाषा और शिल्प की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इनकी भाषा हरकत की भाषा है। इसमें शब्द कम और हरकत अधिक होती है। ये नाटककार मूक अभिनय को अधिक महत्त्व देते हैं। इसमें रोजमर्रा के बोलचाल की भाषा को स्थान दिया जाता है।

भुवनेश्वर का "तांबे के कीड़े", बिपिनकुमार अग्रवाल के "तीन अपाहिज", "लोटन", "खोए हुए आदमी की तलाश", लक्ष्मीकान्त वर्मा का "अपना अपना जूता", शंभूनाथ सिंह के "दीवार की वापसी" और "अकेला शहर", रमेश बक्षी के "तीसरा हाथी", "देवयानी का कहना है" और "वामाचार", रामेश्वर प्रेम के "कैंप", "अजात घर", "चारपाई" और "अंतरंग", काशीनाथ सिंह का "घोआस", मुद्राराक्षस के "मरजीवा",

"योर्स फेथफुली" , "तिलचट्टा", "तेंदुआ", सत्यव्रत सिन्हा का "अमृतपुत्र" आदि हिन्दी के प्रमुख असंगत नाटक हैं।

·2· लोक-नाट्य-प्रयोग :- भारतीय लोक नाट्य-परम्परा अति प्राचीन है। उसकी प्राचीनता, विविधता, शक्ति और समृद्धि निर्विवाद है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने नाट्य की मूल प्रेरणा और उसकी प्रामाणिकता की अन्तिम कसौटी लोक-जीवन, लोक-मानस और लोक-धर्म को ही स्वीकार किया है।

आजकल साहित्य के क्षेत्र में "लोकसाहित्य" एक विशिष्ट शब्दप्रयोग बन गया है। साहित्य को "लोक" एक नया विशषण मिल गया है। अतः "लोक" का अर्थविस्तार डॉ·सत्येन्द्र ने अपने शोध-प्रबंध "लोकसाहित्य विज्ञान" में इस प्रकार किया है - "लोक" मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोकतत्व कहलाते हैं।"[19]

स्वतंत्रता के बाद ही हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य शैली को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है। संस्कृत नाटकों के शैली-शिल्प के साथ लोकनाट्य का सम्मिश्रण दिखाई देता है। लोकनाट्य अपनी प्रवृत्ति में बहुरंगी तथा प्रयोगशील था। बदलती परिस्थिति के साथ वह भी बदलता रहा। "लोक-नाटक सामान्य जन (कलाकार) द्वारा, सामान्य जन के लिए, अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत, सामान्य जीवन की सहज स्वाभाविक, अनौपचारिक नृत्य, गीत और संगीतमय जीवन्त एवं लोकरंजक अभिव्यक्ति का नाम है।"[20] लोकनाट्य को ही समूचा माध्यम बनाकर नाट्य रचना का प्रथम प्रयोग डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल ने "नाटक तोता मैना" में किया। इसमें लोक रंगमंच की रूढियों, व्यवहारों और प्रतीकों को अपनाया गया है। लोकनाट्य को आधार बनाकर इन्होंने नाटक "एक सत्य हरिश्चन्द्र" की भी रचना की है। इसमें लोकभाषा, लोकगीतों, लोकनाट्य की रूढ़ियों के माध्यम से राजनीति के पाखंड को उघाड़ा है।

वर्तमान समय में लोकनाट्य विशेष रूप से उल्लेख्य है। इसका विकास जन-जीवन की गोद में होता है। लोकजीवन से लोकनाट्य का घनिष्ट संबंध रहा है। इन नाट्यों के माध्यम से लोकजीवन में व्याप्त कुंठा, आक्रोश, क्षोभ, दुःख, दर्द एवं दुराचार को वाणी मिलती है। ढोंगी, पाखंडी, कुकर्मियों की इसमें खूब खबर ली जाती है। चोर, लंपटों और डाकुओं को सजा दी जाती है। इतना ही नहीं, इन नाटकों में सदाचार, सहृदयता, सहानुभूति, सहकारिता तथा सत्संग जैसे सद्गुणों की व्यापकता पर भी बल दिया जाता है। "लोकसाहित्य लोक के विश्वासों, अभिरूचियों और मूल्यों का अभियन्ता और इस प्रकार उसके आचरण का प्रभावक है।"[21]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का "बकरी", विनोद रस्तोगी के "भगीरथ के बेटे", "नई लहर", "एक था तोता : एक थी मैना", मृणाल पाण्डे का "जो राम रचि राखा", मुद्राराक्षस का "आला अफसर", सुशीलकुमार सिंह का "सिंहासन खाली है", शरद जोशी का "एक था गधा उर्फ अलादाद खां", "अन्धों का हाथी", शंकर शेष का "पोस्टर", कुसुम कुमार का "रावणलीला", राजेश जोशी का "जादूगर जंगल" आदि को हम हिन्दी के प्रमुख लोकनाट्य कह सकते हैं।

·3· **शिल्पगत प्रयोग** :- स्वातंत्र्योत्तर कालखंड शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय है। शिल्पगत प्रयोगों को नरनारायण राय ने तीन बिंदुओं में केंद्रित कर दिया है -

·1· अर्थप्रकृतियों एवं अंक दृश्य योजना - का बहिष्कार तथा दृश्य संख्याओं पर अधिक बल दिया जाता है।

·2· दूसरे प्रकार में लिखे गए नाटकों में या तो केवल दो अंक होते हैं या केवल पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बँटे होते हैं। शिल्प की दृष्टि से नाटक को दो हिस्सों में बाँटने की स्थिति महत्त्वपूर्ण है।

·3· तीसरे प्रकार के नाटकों में नाटक अंकों में विभाजित न होकर प्रारंभ से अंततक प्रवाहित रहता है। निर्देशक जहाँ भी चाहे मध्यांतर कर सकता है।[22]

डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल का "एक सत्य हरिश्चन्द्र", सरजूप्रसाद मिश्र का "नारद मोह", डॉ॰शंकर शेष का "एक और द्रोणाचार्य", सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का "बकरी" इन नाटकों में इस प्रकार के शिल्पगत प्रयोग देखने को मिलते हैं। विष्णु प्रभाकर का "युगे युगे क्रांति", जगदीशचन्द्र माथुरजी का "पहला राजा" शिल्प की दृष्टि से नये प्रयोग हैं। "शुतुरमुर्ग" नाटक ज्ञानदेव अग्निहोत्री की एक मंचीय उपलब्धि है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य-साहित्य में शिल्प की दृष्टि से ऐसे प्रयोग किए गए हैं, जिससे नाटकीय दृश्यों में विविधता आ गयी है। शिल्पगत ताजगी बनाए रखने के लिए आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया गया है। व्यंग्य इस नाटक के संवादों की आत्मा है।

प) वस्तुगत प्रयोग

प्रयोगशील नाटककारों ने अपने नाटकों में कुछ वस्तुगत प्रयोग किए हैं। सामान्यतया तीन प्रकार के वस्तुगत प्रयोग दिखाई देते हैं -

क) **मिथकीय प्रयोग** :- मिथक मानव संस्कृति की महत्त्वपूर्ण उपज है। आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य में मिथक का प्रयोग अनेक नाटककारों ने किया है। मोहन राकेश के "आषाढ का एक दिन" और "लहरों के राजहंस" नाटकों में मिथकों का प्रयोग किया गया है। "आषाढ का एक दिन" का कालिदास ऐतिहासिक संस्कृत कवि और नाटककार कालिदास नहीं हैं, बल्कि आज का टूटा हुआ, छटपटाता हुआ कालिदास अर्थात आज का नया लेखक है। डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल एक प्रयोगशील नाटककार हैं। उन्होंने नवीन प्रयोगों में मिथक का अधिक उपयोग किया है। "मिस्टर अभिमन्यु" और "एक सत्य हरिश्चन्द्र" इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। "सूर्यमुख" में नाटककार ने मुक्त प्रेम की समस्या को उठाया है। "कलंकी" का मिथक कल्कि अवतार के हिन्दू मिथ से जुड़ा है।

आधुनिक नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रतिभा के बल पर मिथकों का सुन्दर प्रयोग किया है। उनमें महत्त्वपूर्ण नाटक हैं - धर्मवीर भारती का "अंधायुग", जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क" और "पहला राजा", दयाप्रकाश सिन्हा का "कथा एक कंस की", रामगोपाल गोयल का "एक और अभिमन्यु", डॉ॰शंकर शेष का "एक

और द्रोणाचार्य" आदि।

ख) **कथावस्तुगत प्रयोग** :- साठोत्तरी हिन्दी नाटक साहित्य में कथावस्तु के क्षेत्र में विविध प्रयोग हुए। ऐतिहासिकता, सामाजिकता, राजनीति आदि में निहित विसंगतियाँ, मानवी संबंधों की वैषम्य भरी स्थिति, औद्योगिक युग की यांत्रिक जिन्दगी की अभिशाप से उत्पन्न पूँजीवादी नीति, भ्रष्टाचारी प्रवृत्ति, दो पीढियों के बीच संघर्ष, आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरूष संबंधों की बढ़ती विकृतियाँ, युवा पीढी का दिशाभ्रान्त होना, नई पीढी की चारित्रिक भ्रष्टता, मानवीय विकृति से भरा समाज जीवन, सामाजिक परंपरा एवं कुरीतियों का व्यंग्यात्मक चित्रण आदि अनेक स्थितियों को कथ्य के रूप में स्वीकृत करके आधुनिक नाटककारों ने नाटक विधा को मानवी जीवन के सन्निकट लाने की कोशिश की है। धर्मवीर भारती का "अंधायुग", मोहन राकेश का "आधे अधूरे", विपिनकुमार अग्रवाल का "तीन अपाहिज", ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "शुतुरमुर्ग", डॉ॰लाल का "करफ्यू", "तोता-मैना", "सूर्यमुख", डॉ॰लक्ष्मीकान्त वर्मा का "रोशनी एक नदी है", हमीदुल्ला का "उलझी आकृतियाँ" आदि नाटक इसके सशक्त प्रमाण हैं।

ग) **-हासोन्मुख कथानक** :- आज का युग मुख्यतया विघटनकारी युग है। यह विघटन केवल मानव जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ही नहीं, नाटक की कथावस्तु में भी दृष्टिगोचर होता है। हमारे प्रयोगशील नाटककारों ने परम्परागत कथावस्तु को तोड़ दिया है। आज के कुछ प्रयोगशील नाटकों में कथावस्तु का दिन-ब-दिन -हास होता जा रहा है। अतः आज के प्रयोगशील नाटकों में परंपरागत कथावस्तु का विन्यास नहीं दिखाई देता। कथावस्तु के कुछ अंश या खण्ड ही आज के प्रयोगशील नाटकों की एक खासियत बन गयी है। अतः कथ्यहीनता आज के नाटकों की एक विशिष्टता है। हिन्दी के असंगत नाटक कथ्यहीनतामूलक प्रयोग के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

घ) **पात्र परिकल्पनात्मक प्रयोग** :- स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में अनेक पात्र परिकल्पनात्मक प्रयोग हुए। चरित्र सृष्टि के क्षेत्र में प्राचीन परम्परा को पूर्णतः तोड दिया। प्राचीन नाटक में नायक उच्च कुलोत्पन्न और महान गुणों से युक्त व्यक्ति ही हो सकता

था। लेकिन आज के नाटक का नायक अपाहिज, शराबी, विक्षिप्त, चरित्रहीन, दलित, ग्रामीण और झोपडपट्टी का निवासी भी हो सकता है। जनसामान्य का हुबहू चित्र खिंचने का इन नाटककारों का प्रयत्न रहा है। ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों में मानवी दुर्बलता एवं व्यक्ति-पीड़ा को प्रतीकात्मक रूप में दिखाने का प्रयत्न किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों की यह विशेषता है कि उन्होंने समसामयिक युग के मनुष्य की विक्षिप्तता, बिखराव, टूटन, अलगाव, पीड़ा, टीस आदि को प्रस्तुत किया। उदा·बिपिनकुमार अग्रवाल का "तीन अपाहिज", मोहन राकेश का "आधे अधूरे", लक्ष्मीकान्त वर्मा का "रोशनी एक नदी है", मणि मधुकर का "रसगंधर्व", ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "अनुष्ठान" आदि नाटकों में पात्रों का नामकरण क, ख, ग या एक स्त्री, एक पुरूष, एक लड़का, एक लड़की, काला सूटवाला, पीला नकाबवाला इसप्रकार किया गया है।

ब) **भाषागत प्रयोग** :- आधुनिक नाटककारों ने अपने नाटकों में समय-समय पर भाषागत और संवादीय संरचनात्मक विविध प्रयोग किए हैं, इसका प्रमुख कारण है नाट्यभाषा और संवादीय संरचना नाटककार की अपनी निजी विशेषता होती है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम दृष्टव्य है भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र के नाटकों की भाषा। गोविन्द चातक के मतानुसार - "भुवनेश्वर ने भाषा को एक नई तलाश की ओर उन्मुख किया। उनकी भाषा और संवाद योजना में कई ऐसे तत्व समाविष्ट हुए मिलते हैं जो परवर्ती नाटक के लिए नई दिशा का अन्वेषण करते हैं।"[23]

स्वातंत्र्योत्तर काल में जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क", लक्ष्मीनारायण लाल के "रक्तकमल", "मादा कैक्टस", "अब्दुल्ला दीवाना", "करफ्यू", "सूर्यमुख", "सगुनपंछी", मोहन राकेश के "आषाढ का एक दिन", "आधे अधूरे", मणि मधुकर के "रसगंधर्व", "दुलारीबाई", "खेला पोलमपुर", मुद्राराक्षस के "तिलचट्टा", "मरजीवा", "योर्स फेथफुली" आदि नाटक भाषागत तथा संवादीय संरचनात्मक प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

भ) **प्रतीक प्रयोग** :- प्रतीक मानव जीवन के गत्यात्मक सौंदर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति को प्रकट करनेवाला एक सक्षम माध्यम है। प्रतीक में कलाकार की कारयत्री

प्रतिभा चमकती है। प्रतीक याने चिह्न या संकेत। जब कोई लेखक किसी विशिष्ट बात को, किसी विशिष्ट संकेतों या चिह्नों के द्वारा प्रकट करना चाहते हैं, तब वह अपने साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग करता है। प्रतीक अंग्रेजी के Symbol का हिन्दी रूपांतरण है। नाटक दृश्य-काव्य होने के कारण उसमें प्रतीकों का प्रयोग नाटककार करते आये हैं। वास्तव में प्रतीक की ओर नाटक की भाषा में कोई विशेष अंतर नहीं होता है। डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार - "प्रतीक की अपनी कोई अलग भाषा नहीं होती, प्रतीक तो स्वयं नाटक की प्रकृत भाषा और सहज बोल हैं - ऐसी भाषा जो हम नित्य-प्रति के जीवन में बोलते हैं। चेतन-अचेतन रूप से जिन्हें हम सम्प्रेषणीयता और बोधत्व के माध्यम बनाते हैं।"[24] वास्तव में साहित्य में प्रयुक्त प्रतीक सौंदर्यशास्त्र और भाषाविज्ञान के बीच की कड़ी है। कला का अध्ययन करने वाला शास्त्र सौंदर्यशास्त्र कहलाता है और भाषा का अध्ययन करनेवाला विज्ञान भाषाविज्ञान। कला और भाषा के बीच प्रतीक की अवधारणा सन्निहित होती है। वृषभ प्रसाद जैन ने "प्रतीक और प्रतीक विज्ञान"[25] ग्रंथ में निम्नांकित आरेख द्वारा यह बात स्पष्ट की है -

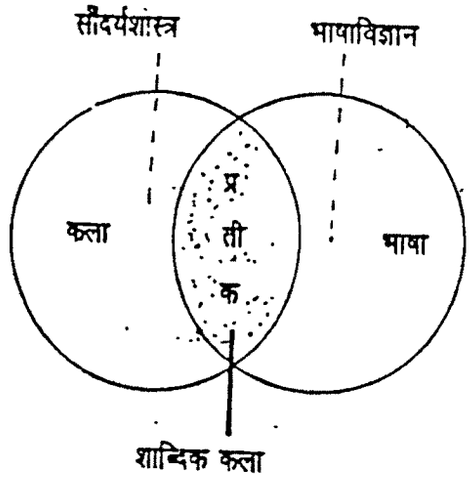

आधुनिक नाटककारों ने अपने नाटकों में विविध प्रकार के प्रतीकों का संयोजन करके अपने विचारों को अधिक स्पष्ट रूप दिया है। नाटक की शिल्पगत संरचना की दृष्टि से नाटकों में प्रतीकों के प्रयोग विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। प्राकृतिक पशु-

प्रतीक आदि का प्रयोग हमारे नाटककारों ने किया है। तेंदुआ (मुद्राराक्षस), घास और घोडा (गिरिराज किशोर), शुतुरमुर्ग (ज्ञानदेव अग्निहोत्री) आदि शीर्षकों के अभिनव प्रयोग पशु प्रतीक संयोजन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मणि मधुकर का बोलो बोधिवृक्ष शीर्षक प्राकृतिक प्रतीक का अनूठा उदाहरण है।

म) **शीर्षक संरचना** :- स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने अपने नाटकों के शीर्षक बड़े ही कुतूहलजनक तथा रोमांचकारी एवं आकर्षक रखे हैं। किसी वस्तु के शीर्षक से ही उसका विषय, उसकी रूपरेखा आदि की जानकारी मिल सकती है। हमारे स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने शीर्षकों के अनेक तरह के प्रयोग किए हैं। ये प्रयोग मुख्यतः दो प्रकार हैं - ·1·नाटक में प्रयुक्त पात्रों के नामकरण, ·2·नाटकों के शीर्षक। प्रयोगशील नाटककारों ने पात्रों के प्रचलित नामकरण की अपेक्षा वर्णमाला के अक्षरों से युक्त तथा जातिगत संज्ञाओं से प्रयुक्त पात्रों के नाम प्रस्तुत किए हैं। मोहन राकेश के "आधे अधूरे" नाटक के पुरूष पात्रों के नाम पुरूष एक, पुरूष दो इ· दिए गये हैं। मणि मधुकर के "बुलबुल सराय" नाटक में पात्रों के नामों के लिए वर्णमालाक्षरों का प्रयोग (क, ख, आ, ई) किया गया है।

नाटकों के शीर्षकों के बारे में नाटककार सजग और सचेत रहे हैं। आधुनिक मानव के जीवन की विभिन्न स्थितियों, विसंगतियों तथा प्रवृत्तियों को परिलक्षित करते हुए उन्होंने नाटकों के शीर्षकों की नियोजना की है। कुछ शीर्षक नारी-पात्र प्रधान हैं। उदा·दुलारीबाई (मणि मधुकर), देवयानी का कहना है (रमेश बक्षी), द्रौपदी (सुरेन्द्र वर्मा) इ·। कुछ शीर्षक पक्षी-पशु प्रतीक हैं। लहरों के राजहंस (मोहन राकेश) तिलचट्टा (मुद्राराक्षस), घास और घोडा (गिरिराज किशोर), कुत्ते (सुरेशचन्द्र शुक्ल)"चंद्र"·, बकरी, (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) इ·शीर्षक विशेष उल्लेखनीय हैं।

य) **मंचीय प्रयोग** :- नाटक मुख्यतः मंच की दृष्टि से लिखे जाते हैं। डॉ·रीतारानी पालीवाल के मतानुसार "नाटक और रंगमंच एक दूसरे के कार्य और कारण हैं, एक दूसरे के पूरक हैं और एक दूसरे के पर्याय भी हैं।"[26] रंगमंच नाटक की आत्मा है। नाटक अब मनोरंजन का साधन न रहकर सार्थक जीवनाभिव्यक्ति का माध्यम

बना है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों में जगदीशचन्द्र माथुर का "कोणार्क" कथ्य, शिल्प, शैली और मंच की दृष्टि से एक नया प्रयोग है। मोहन राकेश ने रंगमंच की दृष्टि से ही नाटक लिखे। "आषाढ का एक दिन", "लहरों के राजहंस", "आधे अधूरे" नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। "आषाढ़ का एक दिन" में मल्लिका और अंबिका के परिवर्तित जीवन पर प्रकाश डाला गया है। टूटे हुए, बिखरे हुए जीवन के अनुसार मंच में परिवर्तन दिखाया गया है। नाटक के पहले अंक में जहाँ सबकुछ ठीक-ठाक दिखाई देता है, वहाँ दूसरे अंक में उसका कुछ भाग टूटा-फूटा दिखायी पडता है और तीसरे अंक में तो भग्नावेष की स्थिति है। नाटक का नायक कालिदास खण्डित व्यक्तित्व का उत्कृष्ट उदाहरण है। "आधे अधूरे" का रंगमंच यथार्थवादी है, यही कारण है कि यह नाटक अनेक बार रंगमंच पर खेला जाता है।

लक्ष्मीनारायण लाल ने भी रंगमंच की दृष्टि से नाटक लिखे हैं। उन्होंने अपने नाटकों में रंगमंच की दृष्टि से ही लोकनाट्य शैली तथा प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है। "अब्दुल्ला दीवाना" का कोर्टसीन रंगमंच की दृष्टि से एक नवीन प्रयोग है। "मादा केक्टस" में फ्लैशबैक पद्धति का उपयोग किया गया है।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री ने भी रंगमंचीयता की दृष्टि से नाटक लिखे हैं। "शुतुरमुर्ग" और "नेफा की एक शाम" नाटक हिन्दी रंगमंच की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। "नेफा की एक शाम" नाटक की विशेषता यह है कि इसके पात्र कम बोलते हैं लेकिन पात्रों का कार्यव्यापार मंचीयता का सफल अंकन है। नाटककार ने आदिवासी जीवन को रंगमंच पर प्रस्तुत किया है।

रंगमंचीयता की दृष्टि से डॉ॰शंकर शेष के "फंदी", "एक और द्रोणाचार्य", "खजुराहों का शिल्पी" महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। काव्य-नाट्य प्रयोग की दृष्टि से धर्मवीर भारती का "अंधायुग" एक अभिनव प्रयोग है। मंचीय प्रयोग की दृष्टि से यह नाटक सफलता प्राप्त कर चुका है।

संक्षेप में आज के नाटकों में प्रयोगशीलता अधिक दिखाई देती है। भारतेन्दुजी ने नाटक को युग सत्य से जोड़ने का प्रयत्न किया और जयशंकर प्रसादजी ने उसे विशिष्ट

धरातल पर खड़ा किया। साठोत्तर कालखंड में अधिक प्रयोगशील नाटक लिखे गए। इन नाटकों के कथानक से यह ज्ञात होता है कि आज के नाटकों में जीवन से साक्षात्कार करने का गहरा अनुभव स्थापित हुआ है। इन नाटकों ने परंपरा को त्यागकर नवीन का स्वीकार किया है। इनके कथ्य, परिवेश आदि में नवीनता है। मानवी समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न साठोत्तरी नाटककारों ने किया है। इन नाटकों में सामाजिक परंपरा, स्त्री-पुरूष संबंध, संस्कृति आदि पर प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं, इन नाटकों में प्रेम तथा यौन संबंधी जिजीविषाओं का विशेष रूप से उद्‌घाटन हुआ है।

साठोत्तरी नाट्य साहित्य से यह पता चलता है कि हिन्दी रंगमंच को वर्तमान की ऊँचाई तक पहुँचाने का कार्य प्रयोगधर्मी नाटककारों ने ही किया है। आज के नाटकों में वस्तु, शिल्प, शैली तथा मंच की दृष्टि से प्रयोगशीलता है।

5· मणि मधुकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

मणि मधुकर बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। हिन्दी के आधुनिक नाटककारों में उनका एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी प्रयोगधर्मिता के दर्शन हमें उनके साहित्य में हो जाते हैं। कथ्य की दृष्टि से मणि मधुकर एक राजनैतिक-सामाजिक नाटककार हैं। वह आम आदमी के पक्ष से संपूर्ण व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करते हैं।

मणि मधुकर उन विरले लेखकों में से हैं, जिनकी रचनाओं में सतत विविधता, विस्तार और एक प्रयोगोन्मुख जागरण हमें दिखाई देता है। वह न तो दक्षिण पंथी है और न ही वाम पंथी। उन्होंने किसी भी विचारधारा को अंधे होकर स्वीकार नहीं किया। उन्होंने विरोध किया है, अन्याय, शोषण और अत्याचार का। वह मानव-मूल्यों और मानवता के प्रति हमेशा प्रतिबद्ध रहे हैं।

6· जीवनवृत्त

मणि मधुकर का जन्म 9 सितम्बर, 1942 को हुआ। राजस्थान विश्व-विद्यालय से प्रथम स्थान लेकर उन्होंने हिन्दी में एम्·ए· की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात पत्रकारिता

करने लगे। कल्पना (हैदराबाद) और "अकथ" (जयपुर) जेसे साहित्यिक पत्रों के बाद, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी की "रंगयोग" एवं ललित कला अकादमी की "आकृति" पत्रिकाओं का सम्पादन उन्होंने किया। साथ ही नुक्कड़ और रंगमंच पर अनेक नाटक खेले, चित्रवीथियों में थियेटर वर्कशाप चलाया, काव्य प्रस्तुतियों के लिए प्रयोग किए और दूरदर्शन के लिए छोटी फिल्में बनायी।[27] सम्प्रति मणि मधुकर दिल्ली में नेशनल प्रेस इंडिया के प्रधान संपादक के रूप में कार्यरत हैं। एक सफल नाटककार के साथ ही साथ मणि मधुकर एक कुशल निर्देशक भी है।अपने "दुलारीबाई" नाटक का उन्होंने अच्छी तरह से निर्देशन किया था।

7· मान-सम्मान

मणि मधुकर की साहित्य साधना विपुल है। अपने साहित्य में उन्होंने भोगे हुए यथार्थ को अपनी कारयत्री तथा भावयत्री प्रतिभा के द्वारा अभिव्यक्त किया है। उनके साहित्य की मौलिकता निःसंदेह है। अतः वे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं।

×× केन्द्रीय साहित्य अकादमी के सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित।

×× "रसगंधर्व" पर मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का सेठ गोविन्ददास पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान एवं दक्षिण साहित्य संगम कर्नाटक से भी पुरस्कृत।

×× "बुलबुल सराय" पर महाराष्ट्र नाट्य-मंडल का मामा वरेरकर पुरस्कार।

अधिकांश नाटकों का मराठी, कन्नड, बंगला, गुजराती, पंजाबी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

संप्रति :- दिल्ली मे नेशनल प्रेस इंडिया के कार्यकारी अध्यक्ष।

8· कृतित्व

मणि मधुकर बहुमुखी प्रतिभासंपन्न लेखक हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने हिन्दी जगत् को नयी समीक्षा दृष्टि देने के लिए प्रवृत्त किया है, क्योंकि उनकी साहित्य-संपदा में उनके द्वारा किए गए विविध प्रयोग सहज ही दृष्टव्य हैं -

कविता संग्रह	खंड-खंड पाखंड पर्व, घास का घराना, बलराम के हजारों नाम, सुधि सपनों के तीर आदि।
कहानी संग्रह	हवा में अकेले, एकवचन-बहुवचन, स्वमेव माता, चुपचाप दुःख, हे भानमती, चुनिंदा चौदहा, भरतमुनि के बाद आदि।
उपन्यास	सफेद मेमने, पत्तों की बिरादरी, पिंजरे में पन्ना, मेरी स्त्रियाँ, सरकंडे की सारंगी आदि।
संस्मरण	सूखे सरोवर का भूगोल, उड़ती हुई नदियाँ, भुने हुए प्रेम का स्वाद आदि।
संकलन	पिछला पहाड़ा।
संपादन	अपने आसपास, दूत और विलंबित, जीवन-ज्योर्णीदिमि णेव।
बाल साहित्य	सुपारीलाल, अनारदाना।
नाटक	रसगंधर्व, खेला पोलमपुर, दुलारीबाई, बुलबुल सराय, इकतारे की आँख, बोलो बोधिवृक्ष।
रेडिया नाटक	बौना संसार।
एकाकी संग्रह	सलवटों में संवाद।
राजस्थानी भाषा में लेखन	पगफेरो, बावन भैरूं, सुरपुर च्यांरूमेर, माणस छाणस, भुरंट भाखर, आडा ठाडा, रातवासो आदि।

9· बहुविध साहित्यकार

राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र के साहित्यकार मणि मधुकर हिन्दी साहित्य के अधुनातन बहुचर्चित हस्ताक्षरों में से एक हैं। राजस्थान के सर्वाधिक विवादास्पद, स्मृहणीय, चर्चित

कवियों में इनका नाम प्रमुख है। सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि मणि मधुकर का लेखन निरंतर जारी है। उन्होंने काफी महत्त्वपूर्ण लिखा है और महत्त्वपूर्ण बने रहने की कला भी उन्हें आती है। इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी चलायी है। इनकी सृजन-क्षमता निरन्तर चौंका देनेवाले नये-नये आयाम उद्‌घाटित करती रही है।

अ) **कवि के रूप में**

नई कविता के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में मणि मधुकर अपनी पहचान स्थापित कर चुके हैं। "सुधि सपनों के तीर" में कवि का भावुक मन गीत को माध्यम बनाकर चला है। "खंड खंड पाखंड पर्व" में सशक्त और विकलांग दोनों प्रकार के बिंब उभरे हैं। इसमें स्वातंत्र्योत्तर खंडित होते जीवन-मूल्यों के पाखण्ड की प्रस्तुति करते हुए समसामायिक विद्रूपताओं पर चोट की गयी है। "टूटी हुई टापों वाला अश्व" प्रभावशाली रचना है। "स्थिति" कविता में चुस्ती और कसावट है। "घास का घराना" नौ कविताओं का संकलन है। इन कविताओं में राजनीतिक विद्रूपताओं और असंगतियों का चित्रण है। "असली इन्द्रजाल" फंतासी पद्धति पर आधारित कविता है। "बलराम के हजारों नाम" छोटी कविताओं का संकलन है। "एक पैदल बातचीत", "अंतहीन यात्रा" आदि कविताओं में कवि ने संघर्षशील आस्था को कलात्मक अभिव्यक्ति दी है। इनमें भयावह और क्रूर स्थितियों की गिरफ्त से मुक्ति का रास्ता खोजते व्यक्ति के आत्मसंघर्ष का चित्रण है।[28]

आ) **कहानीकार के रूप में**

कहानीकार के रूप में मणि मधुकर ने हिन्दी कथाजगत् में अपनी पहचान स्थापित कर ली है। इनकी अधिकांश कहानियाँ राजस्थान के रेगिस्तानी जन-जीवन पर केन्द्रित है। स्त्री उनकी हर कहानी का केंद्र बिंदु है और कथ्य में सनसनी उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखती है। मणि मधुकर की कहानियों का शिल्पविधान विशेष रूप से चर्चित रहा है।[29]

इ) उपन्यासकार के रूप में

उपन्यासकार के रूप में मणि मधुकर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। स्त्री और सैक्स तथा राजस्थान के रेतीले भू-भाग का जीवंत परिवेश, उनके उपन्यासों में अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ उभरे हैं। इनके उपन्यासों का कथ्य बहुआयामी है और सैक्स भाव सभी कृतियों में समान भाव से व्याप्त है, जो कहीं कहीं घिनौना भी हो जाता है। मणि मधुकर के उपन्यासों की एक और रूढ़ि है - कविता। उपन्यासों में कविताओं के पर्याप्त उदाहरण हैं।

ई) नाटककार के रूप में

हिन्दी नाट्य साहित्य में मणि मधुकर प्रयोगशील नाटककार के रूप में अधिक प्रसिद्धी प्राप्त कर चुके हैं। "मणि के नाटकों में आम आदमी के दुःख-दर्द, आकांक्षा-आशंकापूर्ण जीवन के अंधकारमय वर्तमान और आशाहीन भविष्य के बुनियादी कारणों की तलाश करते हुए व्यवस्था की विसंगतियों और विडम्बनाओं को न केवल उजागर ही किया गया है, बल्कि उनके लिए जिम्मेदार शक्तियों के खिलाफ संगठित होकर सतत संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी गयी है।"[30]

10. नाटक संबंधी मणि मधुकर की धारणा

मणि मधुकर नाटक लिखने के पीछे अन्दर की माँग की आवश्यकता महसूस करते हैं। अगर अपने को संबोधित करके कुछ कहना है तो उसके लिए प्रभावी माध्यम नाटक है। मणि मधुकर अपने कवि, कहानीकार या उपन्यासकार को सँभालकर रखते हुए नाटक लिखना चाहते थे। ठीक उसी तरह उन्होंने सर्वप्रथम "रसगंधर्व" की रचना की। इसमें कविता अवश्य है, लेकिन पूरी तौर पर यह एक नाटक ही है। नाटक में कविता और कथा के अलावा बहुत-कुछ लिखा जा सकता है क्योंकि नाटक में पूरी जिन्दगी को लोगों के सामने पेश किया जा सकता है। नाटक में दर्शक नाटककार को ठीक जगह पर पकड़ लेता है - वह खुलकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। यह बहुत बड़ी चीज है, जो नाटक में मिलती है। इसलिए मणि मधुकर मूलतः अपने को नाटककार मानते हैं।[31]

अ) **हिन्दी नाटक संबंधी**

हिन्दी रंगमंच को लेकर मणि मधुकर में झुंझलाहट रही है। मोहन राकेश के "लहरों के राजहंस" और "आधे अधूरे" नाटक उन्हें किसी उपन्यास का नाट्यान्तर लगते हैं। मणि मधुकर की धारणा है कि स्त्री-पुरूष संबंध या संवेदना के धरातल पर एक बड़ी गलत दिशा में हिन्दी नाटक जा रहा है और इसकी प्रशंसा भी हो रही है। जब कोई नाटक मंच पर आकार लेता है तो उसकी तमाम खूबियाँ, कमजोरियाँ तेजी से हमारे सामने उजागर हो जाती हैं। मणि मधुकर को ज्ञानदेव अग्निहोत्री का "शुतुरमुर्ग" नाटक "आषाढ का एक दिन" से एकदम विपरीत, बहुत बोलने वाला नाटक लगा। उनके विचार में जिन चीजों को हम तोड़ना चाहते हैं, या जिनके खिलाफ हम खड़े होना चाहते हैं, उनके विरोध के लिए यह नाटक औजार नहीं बन सकता।

आ) **अन्य भाषाओं के नाटक संबंधी**

हिन्दी रंगमंच पर केवल मौलिक हिन्दी के नाटक ही होने चाहिए, इस मत से मणि मधुकर सहमत नहीं हैं। मणि मधुकर का कहना है कि - "अगर दूसरी भाषाओं में नाटक नहीं होंगे तो हमारा रंगमंच अधूरा रह जायेगा। वैसे हिन्दी में इतना सार्थक लेखन भी नहीं हो रहा है कि हम केवल हिन्दी के ही नाटक खेलें। रंगमंच पर तमाम भाषाओं के नाटक होने चाहिए। इससे हम बहुत कुछ सीखते हैं। अगर कहा जाये कि केवल राजस्थानी में नाटक या राजस्थानी का नाटक तो हम अपनी राजस्थानी परम्परा को बहुत संकीर्ण बना देंगे। राजस्थानी लावणी और मराठी लावणी में बहुत सारी सामान्य बातें हैं। अगर ये दोनों एक-दूसरे तक नहीं पहुँचेगी तो हम इन बातों को कैसे जानेंगे और कैसे एक-दूसरे से सीखेंगे। इसलिए हमें हिन्दी रंगमंच का दायरा छोटा नहीं करना चाहिए।"[32]

11. मणि मधुकर के नाटकों की अवधारणा

लोकनाट्य शैली में रचित अपने नाटकों के कारण मणि मधुकर निरंतर चर्चित रहे हैं। उनकी कविताओं में और कहानियों में व्यवस्था-विरोध का स्वर काफी प्रखर है, लेकिन लोकनाट्यों में यह स्वर बड़ी तल्खी के साथ उभरा है। नाट्य-शिल्प में इन्होंने कुछ अच्छे

प्रयोग किए हैं। मणि मधुकर के प्रमुख प्रयोगशील नाटक निम्न हैं -

1· **रसगंधर्व**

मणि मधुकर का **रसगंधर्व** नाटक अत्यन्त प्रसिद्ध, बहुचर्चित और अनेकों बार रंगमंच पर विविध रूपों में प्रस्तुत एक नया और महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। अपनी नवीनता और प्रयोगशीलता के साथ यह एक "एब्सर्ड" नाटक भी है। इस राजनीतिक नाटक में व्यंग्य, विद्रूप और विडम्बना के कई स्तर खुलते जाते हैं। मतगणना, चुनाव तथा बहुमत को इस नाटक में राजनीतिक प्रवंचना कहा गया है। सच्चाई से कटी मतगणना और स्वार्थों के दायरे में बंधी बहसों, सत्ताधारियों की विद्रूपता, अफसरों की कूटनीतिज्ञता, भाई-भतीजावाद की विडम्बना एवं खुशामदी झोली उठानेवालों की पदोन्नति पर व्यंग्यात्मक चोट करने का प्रयत्न नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से किया है। मूलतः यह एक राजनीतिक-सामाजिक चेतना का नाटक है। इस नाटक के संदर्भ में डॉ·चन्द्रशेखर के विचार मननीय हैं - "हमारे राजनेता, शासक, सिद्ध गंधर्व हैं। अपनी गंधर्व विद्या से नाटक की राजबेटी, राजरानी, राजमाता जन-जन को गंधर्व स्वप्न बांटती है। आज देश पूरे गंधर्वोत्सव में नृत्य मग्न है। राजनैतिक गंधर्व विवाह हो रहे हैं, गंधर्व सन्तान जन्म रही है, गंधर्व-रस बरस रहा है, गंधर्व-गान हो रहे हैं। जनवादी मूल्यों की हत्या, विघटनकारी तत्वों को प्रश्रय···यह है हमारे गंधर्वों का यथार्थ जिस पर कि उन्होंने रसगंध-भीने स्वप्नों का आवरण डाल दिया है।"[33]

"रसगंधर्व" एक प्रतीकात्मक नाटक है। प्रतीकात्मकता का व्यापक और बहुविध इस्तेमाल मणि मधुकर ने किया है। इसके पात्र अ, ब, स, द आम आदमी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जेल आम आदमी की बन्दी आकांक्षाओं की प्रतीक है, तो वहाँ फैला कूड़ा-कर्कट कोरे सपनों और थोथे आदर्शों के यथार्थ के द्योतक हैं। राजकुमारी और अप्सरा राजसत्ता की प्रतीक है। अफसर नौकरशाही का प्रतिनिधि है।

सारी अस्तव्यस्तता के बीच से उत्पन्न होने वाला असन्तोष, विवशता, कडवाहट, घृणा, विद्रोह की तिलमिलाहट और अंततः मुक्ति की छटपटाहट रसगंधर्व नाटक का सत्य है।

2· दुलारीबाई

मणि मधुकर का दुलारीबाई लोकनाट्य परंपरा का हास्य रस प्रधान नाटक है। यह पूरी तरह से यथार्थवादी नाटक है। इसमें राजनीतिक और सामाजिक भ्रष्टाचार को खुलकर उभारा गया है। दुलारीबाई नाटक में दुलारी के अति कृपण और लोभी विसंगत चरित्र, सौ वर्ष पुराने जूतों के जोड़े, ग्रामीणों की वासना लोलुप दृष्टि और लम्पटता एवं कल्लू भांड की भंडैती के द्वारा नाटककार ने हास्य रस की सामग्री जुटाई है। प्रस्तुत नाटक का मुख्य नारी पात्र दुलारीबाई है, जो कंजूस नारी का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस नाटक की अवधारणा के बारे में मणि मधुकर का कहना है कि केवल गंभीर और स्त्री-पुरुष संबंधों को दर्शानेवाले नाटक लिखना नाटककार का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। जहाँ मानव मन में गंभीरता होती है वहाँ उसके मन में हास्य विनोद के फौव्वारे भी उड़ाने की क्षमता होती है। अतः गंभीर नाटक के साथ ही साथ नाटककार को हास्य प्रधान नाटक लिखने की भी आवश्यकता है। मणि मधुकर के शब्दों में - "जब हम "बुलबुल सराय" जैसा नाटक लिखते हैं तो हमारा यह मन भी होता है कि हलका-फुलका नाटक लिखें। यह हमारे रंग-जीवन का हिस्सा है। यह कलकत्ता में लिखा था और वहीं के कलाकारों ने लिखवाया था। इसीलिए अच्छा लिखा गया। वैसे सिर्फ एक ही तरह के नाटक लिखना जरूरी नहीं है। सिर्फ स्त्री-पुरुष संबन्धों को लेकर तो नाटक नहीं लिखे जा सकते। न ही हम हर वक्त गम्भीर बने रह सकते हैं। "दुलारीबाई" में उतनी ही गम्भीरता है जितनी एक सीधे सादे लोकनाटक में होती है।"[34]

मणि मधुकर का "दुलारीबाई" लोकनाट्य परंपरा का एक ऐसा नाटक है, जो एक साथ लोगों को हँसाता है तो दूसरी ओर उनकी न्यूनताओं तथा लोभी वृत्तियों पर कठोर व्यंग्य करता है।

3· बुलबुल सराय :-

बुलबुल सराय नाटक में समसामायिक जीवन की विसंगतियों की बेलौस अभिव्यक्ति है। इस नाटक में नाटककार ने धार्मिक-राजनीतिक आडम्बर और

उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार पर करारा और पैना व्यंग्य किया है। डॉ॰गिरिराज शर्मा "गुंजन" के मतानुसार "बुलबुल सराय में मूलतः निरंकुश शासन व्यवस्था द्वारा सामान्य जन में भय, अत्याचार और अन्याय के आतंक द्वारा शोषण करने और उसे अपने निहित स्वार्थों के लिए प्रयोग में लाने का चित्रण किया गया है।"[35] बुलबुल सराय रूपी कैदखाने में मानों प्रत्येक पात्र बन्दी, विवश और असहाय है और शोषण की चक्की में पिस रहा है। प्रस्तुत नाटक में एक साथ लोकधर्मिता और आधुनिकता का सम्मिश्रित प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। स्वयं नाटककार के शब्दों में - "फिर "बुलबुल सराय" में मैंने सोचा कि क्या लोकधर्मिता और आधुनिकता को एक साथ, एक धरातल पर "देखा" जाना संभव है। "बुलबुल सराय" में मैंने यह प्रयोग किया।"[36]

मानव मूल्यों के प्रति मणि मधुकर की निष्ठा "बुलबुल सराय" में दिखाई देती है। यह नाटक मणि मधुकर को अच्छा क्यों लगता है, इस संदर्भ में वे स्वयं कहते हैं - "यह साम्राज्यवाद और शोषण के खिलाफ एक स्वर है। हर आदमी के अपने भीतर एक तानाशाह है, जो बड़ा भयावना, क्रूर और निर्लज्ज है। हम हर रोज मानवीय संबंधों की बात करते हैं, किन्तु हमारे भीतर जो मायासुर बैठा हुआ है, उसे नहीं पहचानते।"[37]

स्त्री-पुरूष संबंधों को इस नाटक में एक नवीन एवं मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। राजस्थानी लोक-नाट्य तत्वों पर आधारित यह एक विशिष्ट नाटक है। सराय जहाँ संसार की प्रतीक है, वहाँ बुलबुल प्रेम, करूणा, दया, सहानुभूति, मस्ती आदि मानव मूल्यों की प्रतीक है। यह सराय राजा प्रचण्डसेन और मायासुर जैसी निरंकुश, छल, छद्ममयी दुष्प्रवृत्तियों के प्रवेश से नाटकीय आतंकपूर्ण और दुःख-दर्दमयी बन गयी है।

4· इकतारे की आँख

"इकतारे की आँख" में कबीर और उनके समकालीन परिवेश को नये संदर्भ देकर प्रस्तुत करने का प्रयास मणि मधुकर ने किया है। इतना ही नहीं, इस नाटक में संदर्भों या मिथकों के सार्थक उपयोग से वर्तमान युग की विसंगति को बेनकाब

भी किया गया है। कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व को लेकर लिखे इस नाटक में पाखण्ड और अधर्म पर प्रहार किया गया है।

"इकतारे की आँख" नाटक के संदर्भ में गिरीश रस्तोगी के विचार दृष्टव्य हैं - "नाटक मुख्यतः कबीर को आधार बनाकर चलता है और कबीर के माध्यम से मानवीय त्रासदी और आधुनिक भावबोध को प्रस्तुत किया गया है।...कबीर के पदों दोहों-साखियों का विभिन्न संदर्भों में प्रयोग किया गया है। "लाली मेरे लाल की" को ही आधुनिक अनुभवों से जोड़कर भिन्न अर्थ दे दिया है। इकतारा लेकर गाते हुए कबीर से संभवतः नाटककार ने उनके संत रूप को स्थापित किया है।"[38]

मध्ययुगीन भक्तिकाल के संत महात्मा कबीर का व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकित करना मणि मधुकर के इस नाटक की उपलब्धि कही जा सकती है। अपने युग में वर्ग, श्रेणी और धर्म से विघटित समाज में एकात्मता स्थापित करने का जिस महात्मा कबीर ने महन्मंगल कार्य किया, उसका व्यक्तित्व भी अर्थाभाव की थपेडें खाकर खण्डित हुआ दृष्टिगत होता है।

श्री कन्हैयालाल नंदन द्वारा नाटककार मणि मधुकर के साक्षात्कार से "इकतारे की आँख" नाटक की अवधारणा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। नाटककार का कहना है कि मध्यप्रदेश कला-परिषद ने मणि मधुकर को नाटक लिखने के लिए कहा। तत्पश्चात नाटककार ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ कई बार विचार विमर्श किया और यह तय हुआ कि नाटक व्यक्ति पर नहीं वातावरण पर लिखा जाए। क्योंकि, कबीर जो कुछ थे, अपने परिवेश की उपज थे। नाटककार ने यह नाटक लिखते समय व्यंग्य का खूब प्रयोग किया है। विशेषतः राजनेताओं, समाजसुधारकों, विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों आदि ने कबीर की मानो हत्या की थी, उस हत्या के खिलाफ नाटककार ने अनेक जगह व्यंग्य का आश्रय लेकर नाटक लिखा है। इस नाटक के कुछ दृश्य जब द्विवेदीजी को सुनाए गए, तब वे खूब हँसे।[39]

इसमें संदेह नहीं कि नाटककार मणि मधुकर ने "इकतारे की आँख" में कबीर के व्यक्तित्व की अपेक्षा तत्कालीन वातावरण को अधिक महत्त्व देकर नाटक लिखा है और वह अनेक जगह मंचीत हो चुका है।

5· खेला पोलमपुर

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से नाटककार ने भ्रष्ट व्यवस्था और जनता के बीच टकराहट और शासनतंत्र की विकृतियों, विडम्बनाओं को नंगा करने का नाटकीय प्रयत्न किया है। यह साम्यवादी चेतना से प्रभावित नाटक है। इसमें भडकते वर्गवाद एवं बदलती मूल्य भंगिमाओं की अभिव्यक्ति की गई है। इसमें तथ्यगत नवीनता है। समरू राजा लक्खी शाह के विरूद्ध संघर्ष करता है। इस राजा के राज्य में एक युवक प्रतिदिन इसलिए मारा जाता है कि उसकी उम्र राजा की आयु में जुड़ जाये। आखिर में लक्खी शाह का अंत होता है। मणि मधुकर ने समरू को शोषित जनता के अन्तर्मन की ज्वाला कहा है, लेकिन इस नाटक में संघर्ष का स्वर व्यक्तिगत ज्यादा है, एकजूट और सामूहिक कम।

प्रस्तुत नाटक के संदर्भ में डॉ·गिरिराज शर्मा 'गुंजन' के विचार दृष्टव्य हैं "खेला पोलमपुर में मूलतः निरंकुश शासन व्यवस्था द्वारा सामान्य जन में भय, अत्याचार और अन्याय के आतंक द्वारा शोषण करने और उसे अपने निहित स्वार्थों के लिए प्रयोग में लाने का चित्रण किया गया है।"[40] स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में जो असंगतियाँ और विरोधाभास निर्माण हुए हैं, उनका पर्दाफाश इस नाटक का मुख्य प्रतिपाद्य है।

इस नाटक के संबंध में डॉ·जयदेव तनेजा ने लिखा है - "लोककथा, गीत, संगीत, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध जन-आक्रोश, एब्सर्ड-से लगनेवाले स्थितियों के अन्तर्विरोध को उजागर करते पैने संवाद तथा अभिनव लचीला रंग-शिल्प जैसी चिर-परिचित मधुकरीय विशेषताएँ हमें यहाँ भी देखने को मिलती हैं।"[41] संक्षेप में खेला पोलमपुर मणि मधुकर का एक ऐसा नाटक है, जिसमें स्त्री-पुरूष संबंधों की नयी व्याख्या तथा राजनीतिक असंगतियों की गतिविधियाँ सहज ही देखने को मिलती हैं। रंगमंच की दृष्टि से नाटककार का यह एक सुन्दर प्रयोग है।

बोलो बोधिवृक्ष

"बोलो बोधिवृक्ष" मणि मधुकर का एक नया नाटक है, जो 1991 में पहली बार प्रकाशित हुआ है। वास्तव में "बोलो बोधिवृक्ष" का आलेख कुछ साल

पहले नाटककार ने लिखा था और जिसका 1981 में मराठी में अनुवाद होकर वह मराठी रंगभूमि पर खेला भी गया था। इस नाटक की मराठी में बड़ी प्रशंसा भी की जा चुकी है। नाटककार ने स्वयं कहा है कि इस नाटक के मंच प्रदर्शन में और आलेख में समय-समय पर कुछ सुधार किए गए हैं और तत्पश्चात पुस्तकाकार के रूप में यह नाटक आज हमारे सामने प्रस्तुत है। नाटककार के शब्दों में - "कई रंगशिविरों में मैंने समय-समय पर उसे जाँचा है और अब सन्तुष्ट हूँ।"[42]

प्रस्तुत नाटक आधुनिक जीवनबोध से संबंधित है। इस नाटक में नाटककार ने आज की अनेक राजनीतिक गतिविधियों को अपने नाटक में प्रचुर मात्रा में स्थान दिया है। इस नाटक में मुख्यतया स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति का पर्दाफाश किया गया है। आजकल प्रत्येक नेता के मन में भारत का महामंत्री बनने की जबरदस्त लालसा है और इस लालसा का एक अत्युत्तम उदाहरण बोधिवृक्ष है। प्राकृतिक प्रतीक तथा मिथकीय शैली का विडंबनात्मक प्रयोग नाटककार ने आज की राजनीतिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए किया है। भारत की देश-विदेश नीति पर करारा व्यंग्य कसा है। रिश्वतखोरी पर प्रकाश डाला है और राजनीतिक भ्रष्टाचार के हर एक पहलू को रेखांकित किया है। इतना ही नहीं, इस नाटक में आज के स्वातंत्र्योत्तर नाटककार पर भी कठोराघात किया गया है। आज का नाटककार कैसे होता है, वह राजनीति का आश्रय कैसे पाता है, उसकी फाँसी की सजा कैसे रद्द होती है और वह एक राजनीतिक नाटककार के रूप में खुले आम अपना रंगीन जीवन कैसे बिताता है, इसका यथार्थ चित्र नाटककार ने उभारा है। विशेषतः बोधिवृक्ष को परिलक्षित करते हुए प्राचीन मिथक को आधुनिक जीवन संदर्भ में ढालने का नाटककार का प्रयास बड़ा ही साहसिक है।

12. शोध कार्य के अध्ययन की दिशाएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर शोध कार्य की दिशाओं को इस प्रकार निर्देशित किया जा सकता है -

क) असंगत नाट्य-शैली-प्रयोग

ख) लोक-नाट्य-शैली-प्रयोग

ग) शिल्पगत प्रयोग

घ) रंगमंचीय प्रयोग

संदर्भ :-

1. डॉ.सुषम बेदी - हिन्दी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में, प्र.संस्क.1984, पृ.4

2. - वही - पृ.1

3. Editors - Mrs.J.Coulson, Prof.C.T.Carr, Miss.Lucy Hutchinson - The Reader's Digest Great Encyclopaedic Dictionary, Vol-1, Edition 1964, Page 307.

4. Webster's International Dictionary of The English Language, Vol.II, Page.800

5. डॉ.हरदेव बाहरी - बृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश, खण्ड 1, संस्क.1969, पृ.486

6. डॉ.हरीन्द्र - प्रसाद का नाट्य-साहित्यः परंपरा एवं प्रयोग, संस्क.अनुलेख्य, पृ.9

7. संपा.रामचन्द्र वर्म्मा .(प्र). - मानक हिन्दी कोश, तीसरा खण्ड, प्र.संस्क.1964 पृ.632

8. संपा.सीताराम चतुर्वेदी - कालिदास ग्रंथावली (मालविकाग्नि मित्र) तृ.संस्क. संवत् 2019, पृ.271
"तत्र भवानिमं मा च शास्त्रे प्रयोगे च विमशतु।"

9. संपा.धीरेन्द्र वर्मा.(प्र)- हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, वि.संस्क.संवत् 2020, पृ.528

10. डॉ.शंकरदेव अवतरे - हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग, पृ.11 (डॉ.पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु" - नयी कहानी के विविध प्रयोग, प्र.संस्क. 1974, पृ.10 से उद्धृत)

11. लक्ष्मीकान्त वर्मा - नयी कविता के प्रतिमान, पृ.187,

(डॉ॰पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु" - नयी कहानी के विविध प्रयोग, प्र॰संस्क॰ 1974, पृ॰13 से उद्धृत)

12॰ डॉ॰सत्यवती त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता, प्र॰संस्क॰1991, पृ॰11

13॰ संपा॰धीरेन्द्र वर्मा ॰(प्र॰)॰ - हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, द्वि॰संस्क॰संवत् 2020, पृ॰476

14॰ संपा॰ अज्ञेय - तारसप्तक

15॰ डॉ॰सुषम बेदी - हिन्दी नाट्य : प्रयोग के संदर्भ में, प्र॰संस्क॰1984, पृ॰16

16॰ - वही - पृ॰5

17॰ डॉ॰नरनारायण राय - कोणार्क : रंग और संवेदना (पार्श्ववाचन), प्र॰संस्क॰1987 पृ॰5

18॰ डॉ॰सुरेशचन्द्र शुक्ल "चन्द्र" -नाट्य-चिन्तन : नये संदर्भ, प्र॰संस्क॰1987, पृ॰81

19॰ डॉ॰सत्येन्द्र - लोक साहित्य विज्ञान, द्वि॰संस्क॰1971, पृ॰3

20॰ डॉ॰जयदेव तनेजा - हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा, प्र॰संस्क॰1988, पृ॰126

21॰ डॉ॰दिनेश्वर प्रसाद - लोक साहित्य और संस्कृति, प्र॰संस्क॰1973, पृ॰113

22॰ डॉ॰नरनारायण राय - नटरंग विवेक, प्र॰संस्क॰1981, पृ॰18-19

23॰ डॉ॰गोविन्द चातक - आधुनिक हिन्दी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना, प्र॰संस्क॰1982, पृ॰72

24॰ डॉ॰लक्ष्मीनारायण लाल - मादा केक्टस (भूमिका),नया संस्क॰1959पृ॰8

25॰ वृषभ प्रसाद जैन - प्रतीक और प्रतीक - विज्ञान, प्र॰संस्क॰1991, पृ॰71

26॰ डॉ॰रीतारानी पालीवाल - रंगमंच : नया परिदृश्य, प्र॰संस्क॰1980, पृ॰12

27॰ मणि मधुकर - पिछला पहाड़ा, संस्क॰1988, भीतरी फ्लॅप

28॰ सम्पा॰प्रकाश आतुर - राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति : मणि मधुकर, संस्क॰1987, पृ॰2-4

29॰ - वही - पृ॰4-5

30· संपा·डॉ·विजयकान्त धर दुबे - साठोत्तरी हिन्दी नाटक (डॉ·गिरिराज शर्मा "गुंजन" - साठोत्तरी हिन्दी नाटक : सामाजिक संदर्भ, लेख) · प्र·संस्क·1983, पृ·52

31· संपा· नेमिचन्द्र जैन - नटरंग (अर्ध-शती विशेषांक) खण्ड 13, अंक 50 -52, मार्च-दिसम्बर, 1989, पृ·58-59

32· - वही - पृ·63

33· डॉ·चन्द्रशेखर - समकालीन हिन्दी नाटक : कथ्य चेतना, संस्क·1982,पृ·352

34· संपा·नेमिचन्द्र जैन - नटरंग (अर्ध शती विशेषांक) खण्ड 13, अंक 50 - 52, मार्च-दिसम्बर, 1989, पृ·64

35· संपा·डॉ·विजयकान्त धर दुबे - साठोत्तरी हिन्दी नाटक (डॉ·गिरिराज शर्मा "गुंजन" - साठोत्तरी हिन्दी नाटक : सामाजिक संदर्भ, लेख), प्र·संस्क·1983, पृ·53

36· कन्हैयालाल नंदन - नाट्य-परिवेश, प्र·संस्क·1981, पृ·175

37· संपा·नेमिचन्द्र जैन - नटरंग (अर्ध शती विशेषांक) खण्ड 13, अंक 50 - 52, मार्च-दिसम्बर, 1989, पृ·64

38· संपा·प्रकाश आतुर - राजस्थान साहित्यकार प्रस्तुति : मणि मधुकर (डॉ·गिरीश रस्तोगी - हिन्दी में लोकनाट्यशैली की सार्थक अनुभूति, लेख) संस्क·1987, पृ·35

39· कन्हैयालाल नंदन - नाट्य-परिवेश, प्र·संस्क·1981, पृ·176

40· संपा·डॉ·विजयकान्त धर दुबे - साठोत्तरी हिन्दी नाटक (डॉ·गिरिराज शर्मा, "गुंजन" साठोत्तरी हिन्दी नाटक : सामाजिक संदर्भ, लेख) प्र·संस्क·1983,पृ·53

41· डॉ·जयदेव तनेजा - आज के हिन्दी रंग नाटक : परिवेश और परिदृश्य, प्र·संस्क·1980, पृ·164

42· संपा·नेमिचन्द्र जैन - नटरंग (अर्ध शती विशेषांक) खण्ड 13, अंक 50 - 52, मार्च-दिसम्बर, 1989, पृ·65